ISSN 2454 - 5163

श्री महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर, कारंजालाड, जिला–वाशिम (महा.)

26 अक्टूबर 2020, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 39, अंक 4, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

सम्पादक :
डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

वीतराग-विज्ञान (447)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015
फोन :(0141)2705581, 2707458
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

ISSN 2454 - 5163

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7000
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	10000

शुद्धता का आश्रय

अहा! भगवान आत्मा चैतन्यरस-कंद है। ऐसा आत्मा कभी देखा जाना नहीं और इसकी बात भी सुनने की परवाह नहीं की। दुनिया की चतुराई में लगा रहा, बाहर में कारखाना, धंधा-व्यापार आदि के धमाल में अटक गया; परन्तु भाई! यह तो पागलपना है। यह तो देवाधिदेव तीर्थंकरदेव का कथन आया है कि जानन स्वभाववाला ज्ञायक है तथा अजानन (जड़) स्वभाववाले कर्मपुद्गल हैं, यह आत्मा में इनके भावरूप कैसे हों? अहो! आत्मा ऐसा का ऐसा चैतन्यरस के तत्त्व से भरा हुआ है। वह पर से, कर्म से, निमित्त से भिन्न करके उपासना करने में आता है अर्थात् ज्ञायक को पर्याय में स्वीकार करने पर वह 'शुद्ध है' - ऐसा जानने में आता है। वह सम्यग्दर्शन अर्थात् धर्म की प्रथम सीढी कही जाती है। तथा शुद्धनय का विषयभूत उस एक ही का उग्र आश्रय - सेवन करने पर विशेष-विशेष शुद्धतारूप रत्नत्रय धर्म प्रगट होता है।

- प्रवचनरत्नाकर, भाग-1 पृष्ठ 95

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 39 (वीर नि. संवत् - 2546) 447 अंक : 4

मत कीज्यौ जी यारी...

मत कीज्यौ जी यारी, ये भोग भुजंग सम जान के।।टेक।।
भुजंग डसत इक बार नसत है, ये अनन्त मृतुकारी।
तिसना तृषा बढे इन सेयें, ज्यौं पीये जल खारी।।1।।
रोग वियोग शोक वनिता, धन, समता लता कुठारी।
केहरि करि अरी न देत ज्यों, त्यों ये दें दुःख भारी।।2।।
इनमें रचे देव तरु थाये, पाये श्वभ्र मुरारी।
जे विरचें ते सुरपति अरचे, परचे सुख अधिकारी।।3।।
पराधीन छिन माँहि छीन ह्वै, पापबन्ध करतारी।
इन्हैं गिनैं सुख आक माहिं तिन, आमतनी बुधि धारी।।4।।
मीन मतंग पतंग भृंग मृग, इन वश भये दुखारी।
सेवत ज्यौं किंपाक ललित, परिपाक समय दुःखकारी।।5।।
सुरपति नरपति खगपति हू की, भोग न आस निवारी।
'दौल' त्याग अब भज विराग सुख, मिलै मोक्ष सुखकारी।।6।।

- कविवर पण्डित दौलतरामजी

जो भाव धर्म नहीं, वही अधर्म है

देखो! सातवें नरक का नारकी, जिसके प्रतिकूल संयोगों की, दु:खों की क्या कथा कहें? जन्म से ही सोलह रोग - श्वास, दमा, कैन्सर, शीत, भूख, प्यास इत्यादि की भारी पीड़ा-वेदना होती है। वहाँ की शीत का एक कण भी मनुष्य लोक में आ जावे तो उसके प्रभाव से योजन तक के मनुष्य एवं पशु-पक्षी मर जावें। तैंतीस-तैंतीस सागर पर्यंत अनाज का दाना नहीं मिलता, पानी की बूँद न मिले और भूख ऐसी कि तीन लोक बराबर अन्न खा जावें तो भी न मिटे। ऐसी भयंकर पीड़ा के संयोग में रहकर भी कोई-कोई नारकी जीव आत्मभान प्रकट करके सम्यग्दर्शन प्रकट कर लेते हैं। भाई ! शरीर निरोग हो, बाह्य संयोग अनुकूल हों तो भी धर्म साधन हो सके और अनुकूल साधनों के द्वारा ही धर्म साधन हो सकेगा - ऐसी मान्यता सर्वथा मिथ्या है।

अहा! ऐसे पीड़ाकारक संयोगों में जाकर अनेक बार तैंतीस-तैंतीस सागर तक नारकीय दु:ख सहे तथा अनन्त बार देव भी हुआ। बापू ! यह सब अज्ञान का फल है, ज्ञान का फल तो वीतरागी शान्ति और आनन्द है। ये सभी अनुकूल व प्रतिकूल संयोग शुभाशुभ भावरूप अज्ञान के फल हैं; इसलिये आचार्य कहते हैं कि कर्म का हेतु एक अज्ञान ही है। शुभ या अशुभ जो कर्म बंधन होता है, उनका कारण एकमात्र अज्ञान है। आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में कहा है कि समकिती संतों को जो शुभभावों से तीर्थंकर प्रकृति बंधती है, वह भाव भी अपराध है। यहाँ उसे भी अज्ञान कहा है; क्योंकि उसमें ज्ञान का अंश नहीं है, जिसमें ज्ञान का अंश नहीं है, वह भी अज्ञान कहा जाता है।

यहाँ अज्ञान का अर्थ मिथ्याज्ञान नहीं है; बल्कि इस शुभराग में चैतन्यप्रकाश के परिपूर्ण पुंज भगवान आत्मा के चैतन्यप्रकाश की एक भी किरण नहीं है ; इसलिये अज्ञान कहा है। भाई! यह अज्ञानमय शुभराग स्वयं मिथ्यात्व नहीं है; परन्तु इससे धर्म होता है - यह मान्यता मिथ्यात्व है। इसप्रकार अज्ञान व मिथ्यात्व में अन्तर है।

प्रश्न - भावपाहुड में सम्यग्दृष्टि को जिसभाव से तीर्थंकर प्रकृति बंधती है - ऐसी धर्ममय सोलहकारण भावना भाने का कथन आता है, उस कथन का क्या अभिप्राय है?

उत्तर - हाँ, यह सत्य है; परन्तु वह तो वहाँ व्यवहार दर्शाया है अर्थात् सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा जीवों को समय-समय पर जो सोलहकारण भावना भानेरूप भाव होता है, उसका यथास्थान ज्ञान कराया है; तथापि वह सभी व्यवहार राग अज्ञानभाव है, बंध का कारण है, अधर्म है।

यद्यपि यह बात कर्ण कटु है, सुनने में थोड़ी कड़वी लगती है; तथापि क्या करें? भाई ! जिस भाव से बंध होता है, वह भाव धर्म नहीं है और जो भाव धर्म नहीं है, वही अधर्म है। **- प्रवचनरत्नाकर भाग-5, पृष्ट -28-29**

ज्ञातव्य है कि यह 26 अक्टूबर का अंक नवम्बर माह का ही अंक है।

सम्पादकीय

भरत का अन्तर्द्वन्द

पाँचवाँ अध्याय

(गतांक से आगे ...)

करके आदि जिनेश को, वंदन बारंबार।
तीन खण्ड को जीतने, विजयारध के पार।। १।।

जाने को तैयार हैं, भरतेश्वर महाराज।
सब सेना तैयार है, भरतराज के साथ।। २।।

(मानव)

हिमवन से निकली नदियाँ गंगा-सिन्धु अति मनहर।
पूरब-पश्चिम सागर में क्रमशः गिरती हैं जाकर।।
पूरव सागर में गंगा सिन्धु पश्चिम सागर में।
विजयार्द्ध पार करती वे गिरि की गंभीर गुफा से ।। ३ ।।

दिग्विजय चक्रवर्ती की आधी हो जाने से ही ।
है नाम पड़ा है जिसका विजयार्द्ध गिरि अति मनहर।।
पूरव से पश्चिम तक वह फैला है सागर तट तक।
है भरतक्षेत्र के भीतर विजयार्द्ध गिरि अति सुन्दर ।। ४।।

अति ही गंभीर-गुफायें दो हैं विजयार्द्ध गिरि में।
उनमें से गंगा-सिन्धु पूरव-पश्चिम सागर में।।
जाकर गिरती हैं कल-कल करती जाती हैं सत्वर।
सबके मनको हरती हैं नदियाँ हैं अति ही सुन्दर ।। ५।।

विजयार्द्ध पार उत्तर के तीनों म्लेच्छ खण्डों को।
अपने अधीन करने को सम्राट भरत राजा ने।।
विजयार्द्ध पार करने का मन में संकल्प किया है।
सेना को सेनापति को तत्क्षण आदेश दिया है ।। ६ ।।

पर्वत की उसी गुफा से जिससे है सिन्धु निकलती।
जाना होगा हम सबको तैयारी अपनी-अपनी।।
सब लोग शीघ्र ही करलें तैयारी पूरी-पूरी।
आदेश मिले जब अन्तिम तब सबको चलना होगा।। ७ ।।

आदेश मिला तब सेना सिन्धु[१] का अवलम्बन ले।
विजयार्द्धगिरि की गुफा के अत्यन्त पास जा पहुँची।।
फिर दण्डरत्न के द्वारा जब गुफाद्वार को खोला।
विस्फोट हुआ तब भारी निकली थी भीषण ज्वाला।। ८ ।।

निकलीं लहराती लपटें भीषणगर्मी की लहरें।
झुलसाती गहरे वन को पीड़ित करती जन-जन को।।
जंगल के पशु पक्षी भी आकुल-व्याकुल हो भागे।
वे जहाँ-जहाँ जाते थे ज्वालायें आगे-आगे ।। ९ ।।

ज्वाला जंगल में फैली तब वृक्ष-लतायें झुलसीं।
मुरझाया सारा जंगल बेलें आपस में उलझीं।।
ज्वाल शान्त होने में छह माह लग गये तब फिर।
उसमें प्रवेश करने को सेना तैयार हुई अब ।। १०।।

१. सिन्धु नामक नदी

परवेश किया सेना ने अंधेरी गहन गुफा में।
परकाश हो रहा पूरण काँकिणी रत्न के द्वारा।।
मारग में नदियाँ आईं उन्मग्ना और निमग्ना।
तट पर विश्राम किया था तब थकी हुई सेना ने।। ११।।

यह गहन निमग्ना सरिता सबको नीचे ले जाती।
रे अरे उमग्ना सरिता सबको उछाल देती है।।
वे विषम स्वभावी नदियाँ सिन्धु[१] में मिल जातीं हैं।
उन्हें पार करने को पुल बनवाया लकड़ी का।। १२।।

स्थपती[२] रत्न ने श्रम से अपनी बुद्धि के बल से।
सुन्दरतम पुल बनवाया सब पार हुये उस पुल से।।
तब सेना सहित भरत ने दुर्गम गिरि विजयारध को।
उस पार किया अर पहुँचे उत्तर भारतभूमि[३] में।। १३।।

जब चक्रवर्ती भरतेश्वर उत्तर भारत[४] में पहुँचे।
हाथी घोड़े रथ पैदल चतुरंगी सेना लेकर।।
लख शक्तिपुंज चक्रेश्वर कुछ समझदार राजा तो।
समझ गये थे सबकुछ कुछ समझाने से समझे।। १४।।

अधिकांश नरेश स्वयं ही आकर उनके चरणों में।
झुक गये और विध-विध के दीने उपहार अनेकों।।
बहिन-बेटियाँ ब्याही सम्बन्ध बनाये मधुरिम।
सब विध सहयोगी बनकर कीना सम्पूर्ण समर्पण।। १५।।

१. सिन्धु नामक नदी २. सिलावट, कारीगर ३ व ४. भरत क्षेत्र

कुछ समझाने से समझे कुछ धमकाने से समझे।
कुछ उछले-कूँदे फिर भी आखिर में वे भी समझे।।
कतिपय चिलात[१] से राजा एवं आवर्त[२] महीपति।
लड़ने-भिड़ने को आये वे भी आखिर में समझे।। १६।।

श्री जयकुमार सेनापति अर महामात्य ने सब कुछ।
आगा-पीछा समझाया शक्तीबल भी दिखलाया।।
अर सहज मित्रता के भी तो सभी लाभ समझाये।
वात्सल्यभाव से सबको वे सही राह पर लाये ।। १७।।

ना हुआ प्रताड़ित कोई ना कोई जेल में डाला।
अर अपंग भी किया नहीं अर नहीं किसी को मारा।।
वात्सल्यभाव से सबको सबके मन को था जीता।
इक बूँद भी खून बहा ना अर छह खण्डों को जीता।। १८।।

जब छह खण्डों को जीता अर वृषभाचल पर पहुँचे।
देखा उस खण्डशिला को जिस पर नामावलि अंकित।।
अगणित चक्रेश्वरियों की नामावलि और प्रशस्ति।
अब और नाम लिखने को किंचित् भी जगह नहीं थी।। १९।।

वे सोच रहे थे मन में मैं ही पहला चक्री हूँ।
इन छह खण्डों को मैंने सबसे पहले जीता है।।
अब इसे भोगनेवाला मैं ही पहला नायक हूँ।
यह सब विभूति है मेरी मैं ही इसका मालिक हूँ।। २०।।

१ व २. राजाओं के नाम

यह भूमि अछूती अबतक जिसको मैं भोग रहा हूँ।
है नहीं किसी ने भोगा इसको मैं भोग रहा हूँ।।
इस भरतभूमि का मालिक मैं ही हूँ एक अनोखा।
ऐसी निगाह से अबतक है नहीं किसी ने देखा ।। २१।।

पर आज यहाँ क्या देखा कि मुझे नाम लिखने को।
रंचक भी जगह नहीं है मेरी प्रशस्ति लिखने को।।
चक्रेश्वरियों के नामों से पूरी शिला भरी है।
और अभी तक इनने ही भरतभूमि भोगी है ।। २२।।

रे भोग-भोग कर छोड़ी यह तो उनकी जूठन है।
अब आई है यह जूठन समझो मेरे हिस्से में।।
अब चाह नहीं है मुझको रे रंचमात्र भी इसकी।
ना रंचमात्र भी मुझको है भाव इसे पाने का ।। २३।।

रे नहीं भावना मेरी है नाम लिखाने की भी।
पर नाम लिखाना होगा होता नियोग ऐसा ही।।
है यही निकाचित करम कि जिससे हम प्रेरित होते।
भोगे बिन ना रे इसको कुछ काम नहीं चलता है।। २४।।

एक नाम को मेट भरत ने अपना नाम लिखा था।
अरुचिपूर्वक सही किन्तु आखिर इतिहास बना था।।
अरे बनाया नहीं बन्धु वह अपने आप बना था।
सहज भाव से ही यह सब कुछ अपने आप घटा था।। २५।।

अरे नाम के साथ प्रशस्ति भी तो लिखी गई थी।
यह सब होते हुये उन्हें ऐसा विचार आया था।।
अगला चक्रवर्ती आवेगा जब एक दिवस ऐसे ही।
तब मेरा नाम मिटाकर वह अपना नाम लिखेगा ।। २६।।

रे अनादि से ही इस जग में ऐसा होता आया।
आगे भी चलेगा ऐसा जब तक संसार चलेगा।।
चक्रवर्ती का पुण्य निकाचित ही होता है भाई।
भोगे बिना नहीं कटता न चले कोई चतुराई।। २७।।

नहीं चाहते फिर भी यह सब चलता ही रहता है।
जैसा नियोग होता है वैसा विचार बनता है।।
वैसे होते काम सभी वैसा चिन्तन चलता है।
सभी भाव वैसे बनते वैसा मंथन चलता है ।। २८।।

(विष्णु[१])

इसतरह भरत के अन्तर में नित अन्तर्द्वन्द चले।
नहीं कांक्षा भोगों की भोगों से रहें घिरे।।
टारे से ना टरें निकाचित कर्म सुनो भाई।
पुण्योदय की मजबूरी भी आज समझ आई।। २९।।

पुण्योदय की मजबूरी यह ज्ञानीजन भोगें।
वे भोगें या नहीं इसे तो वे ही पहिचानें।।
समझ नहीं आता है कुछ भी अज्ञानीजन को।
वे नहीं जानते रंचमात्र भी ज्ञानी के मन को।। ३०।।

१. कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वे राम अरु लक्ष्मण, जिन रावण मारा।। की धुन पर गायें।

वे नहीं जानते भावभूमि चौथे गुणथानक की।
इसीलिये उनके मन में नित उलझन ही रहती।।
अगणित भोगों के बीच रहें अर उन्हें नित्य भोगें।
यह सब कैसे हो सकता वे बार-बार सोचें।। ३१।।

रनिवासों के बीच रहें पर लिप्त नहीं होते।
अगणित भोगों के बीच रहें पर उन्हें नहीं भोगें।।
यह सब कैसे हो सकता कुछ समझ नहीं आता।
कोई कुछ भी कहें हमें स्वीकार नहीं होता।। ३२।।

हमें स्वीकार नहीं होता चित्त में बात नहीं जमती।
भाँति-भाँति की शंका चित में नित उठती रहती।।
किससे समझें कौन बतावे समझ नहीं आता।
क्यों ना पूँछे भरतराज से यह विकल्प आता।। ३३।।

जब यह चरचा भरतराज के कानों में आई।
यह बात भरत ने उसको भाई कैसे समझाई।।
एक तेल से भरा कटोरा हाथों में देकर।
इसको भाई जावो तुम रनिवासों में लेकर।। ३४।।

सभी रानियों को दिखलाओ कपड़े-गहनों में।
सजी हुई तैयार एकदम अपने महलों में।।
सभी दिखाओ और खिलाओ विध-विध के पकवान।
आदेश दिया सेवकों को ज्यों आये हों मिहमान।। ३५।।

इनका स्वागत खूब करो मालाओं से लादो।
इनकी सेवा में दो-दो तुम नौकर रखवा दो।।

दो सैनिक भी साथ रखो आगे-पीछे इनके।
हाथों में नंगी तलवारें सदा रहे जिनके।। ३६।।

और सैनिकों से भरतेश्वर क्रोधित हो बोले।
यदी तेल की एक बूँद भी भूमि पर फैले।।
धड़ से मस्तक अलग करो बस उसी एक क्षण में।
मेरा यह आदेश समझलो भली-भाँति मन में।। ३७।।

उससे बोले भरतेश्वर तुम सब देखो-जानो।
और सभी भोगोपभोग भी भोगो मनमाने।।
करो नहीं संकोच, करो वह जो मन में आवे।
इतना रखना ध्यान तेल की बूँद न गिर जावे।। ३८।।

सोना चाँदी रत्न जवाहर जो चाहो ले लो।
जैसा चाहो वैसा ही तुम भोजन बनवालो।।
जितना चाहो उतना ले लो जो चाहो खा लो।
भोग और उपभोगों से तुम अपना मन भर लो।। ३९।।

इतना रखना ध्यान कटोरा हाथों में रखना।
एक बूँद भी तेल अरे धरती पर ना गिरना।।
एक बूँद भी गिरी तो बेटा मारे जावोगे।
कितने जोड़ो हाथ किन्तु फिर बच ना पावोगे।। ४०।।

दिनभर घूमा किन्तु नहीं वह कुछ भी कर पाया।
दिनभर भूखा रहा किन्तु कुछ भी ना खा पाया।।

भोग और उपभोगों को भी भोग नहीं पाया।
भरे कटोरे को संभालने में ही दिन खोया।। ४१।।

साँझ हुई तो भरतेश्वर के चरणों में आया।
शीश झुकाकर नम्रभाव से सब कुछ बतलाया।।
शंकाओं का समाधान हो गया पूर्णतः अब।
इसी तरह मिल गये हमें प्रश्नों के उत्तर सब।। ४२।।

मेरे ही तो नहीं प्रभो! यह प्रश्न सहस्त्रों के।
मेरे जैसे प्रभो लोक में लोग हजारों हैं।।
उन सबके प्रश्नों का उत्तर आज मिल गया है।
इस घटना से चित्त सभी का साफ हो गया है।। ४३।।

निज आतम की ही संभाल में व्यस्त रहें भरतेश।
इसीलिये सब भोग भोगते रहे अभोगे से।।
भोगे और नहीं भोगे कुछ भी कह सकते हैं।
जैसे मैंने नहीं भोगकर भी तो भोगें हैं।। ४४।।

(दोहा)

इसप्रकार भरतेश ने, जीते उत्तर खण्ड।
अब तैयारी में जुटे, अवधपुरी के पंथ।। ४५।।

-●-

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो - वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें -
वेबसाईट - www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र - श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com
ये सभी प्रवचन सामग्री अब vitragvani एप पर भी उपलब्ध है।

छहढाला प्रवचन

निर्जरा व लोक भावना

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै ।।११।।

किनहूँ न करो, न धरे को, षट्द्रव्यमयी न हरे को।
सो लोकमांहि बिन समता, दुःख सहे जीव नित भ्रमता ।।१२।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की पांचवीं ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

नवतत्त्वों का सच्चा स्वरूप नहीं समझ पाने वाले लोग एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व को मिला देते हैं। निर्जरा का कारणभूत तप तो चैतन्य में होता है; परन्तु अज्ञानी जड़-शरीर में तप होना मानते हैं। किसी व्यक्ति के दाहिने पैर में फोड़ा हो गया, जब वैद्य उसमें पट्टी बांधता तो वह दर्द के कारण चिल्लाता था। धीरे-धीरे उसकी चिल्लाने की आदत पड़ गई। एक बार वैद्य ने दाहिने पैर के बदले बायें पैर को छुआ तो भी वह चिल्लाने लगा, तब वैद्य ने कहा कि भाई, यह तो दूसरा पैर है, फोड़ा तो दूसरे पैर में हुआ है। इसीप्रकार अज्ञानी जीव, अजीव की अवस्था को जीव की मान लेता है; परन्तु भाई ! जड़ की पर्याय तुझमें नहीं होती तो व्यर्थ का मोह क्यों करता है? देह में आत्मबुद्धिवाला जीव मानता है कि मैंने आहार का त्याग करके शरीर को सुखा दिया, इससे मुझे तप हो गया; परन्तु भाई! तप शरीर में होता है या आत्मा में? खुराक नहीं खाना और शरीर का सूखना तो पुद्गल की अवस्था है, उस समय जीव में अर्थात् तुझमें क्या

हुआ - उसकी तुझे खबर है? जिसने देह में आत्मबुद्धि छोड़कर देह से भिन्न चैतन्य का अनुभव किया वह जब देह से उदासीन होकर चैतन्य में स्थिरता करता है, तब उसे शुद्धता की वृद्धिरूप तप और निर्जरा होती है। भगवान ने भी अपने आत्मा में ऐसा तप किया था।

शरीर की अवस्था अजीव है, रागादि भाव आस्रव हैं और निर्जरा अजीव और आस्रव से भिन्न वीतरागभावरूप है। आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा में एकाग्र होने से निर्जरा होती है। निर्जरा का ऐसा स्वरूप बारम्बार विचारकर निर्जरारूप परिणमन करने से मोक्षसुख का अनुभव होता है। इसीलिए कहा है - सोई शिवसुख दरसावे। इसके अलावा आत्मज्ञान रहित उपवासादि तप करने से यदि उसमें मान आदि कषाय की तीव्रता न हो तो मात्र शुभभाव होता है और पुण्य बंध होता है; परन्तु उससे धर्म या मोक्षसुख नहीं होता। इसलिए मोक्षार्थी जीव को मोक्ष के कारणरूप निर्जरा का स्वरूप जानकर आत्मसन्मुखता द्वारा उसकी भावना करनी चाहिए अर्थात् उस रूप परिणमना चाहिए।

इसप्रकार निर्जरा भावना का वर्णन पूरा हुआ और अब लोक भावना का वर्णन करते हैं -

जीवादि पाँच द्रव्य तथा ३४३ घन राजू प्रमाण आकाश - इसप्रकार छह द्रव्यों का समूह लोक है, इसके अलावा शेष अनन्त-अनन्त भाग में मात्र आकाश है, जो अलोक है। जीवादि छह द्रव्य अनादि-अनन्त स्वयं सत् हैं, उन्हें किसी ने बनाया नहीं है, इसलिए इस छह द्रव्य स्वरूप लोक को किसी ने किया नहीं है। किसी ने इसे अपने माथे पर धारण भी नहीं किया है और कोई उसका नाश भी नहीं कर सकता। इसप्रकार कोई ईश्वर इस लोक का कर्ता-धर्ता नहीं है।

इस विश्व को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया है, विष्णु ने धारण किया है और

महेश्वर इसका संहार करेंगे - यह कल्पना सत्य नहीं है। परमार्थ से आत्मा का और कोई अन्य सभी पदार्थों का उत्पाद स्वभाव, स्वयं प्रतिक्षण नई-नई पर्यायें उत्पन्न करता है, इसलिए वह स्वयं ब्रह्मा है। प्रत्येक पदार्थ ध्रुव स्वभाव के कारण स्वयं अपने स्वरूप को सदा कायम रखता है, इसलिए वह स्वयं विष्णु है और प्रत्येक पदार्थ व्यय स्वभाव से प्रत्येक पर्याय का दूसरे क्षण में विनाश करता है, इसलिए पदार्थ स्वयं ही अपना महेश्वर है। वस्तु के उत्पाद-व्यय और ध्रुव स्वभाव के अलावा कोई उसका कर्ता-धर्ता या हर्ता नहीं है। यह जीव ३४३ घन राजू प्रमाण इस लोक में सर्वत्र समताभावरूप वीतरागता के अभाव से भ्रमण करते हुए दु:ख सहन कर रहा है।

३४३ घन राजू प्रमाण लोक का संक्षिप्त विवरण इसप्रकार है -

यह लोक १४ राजू ऊँचा है। इसमें ७-७ राजू के दो भाग हैं।

सात राजू वाला ऊपरी भाग बीच में पाँच राजू लम्बा है और ऊपर-नीचे एक-एक राजू है। अर्थात् पूर्व-पश्चिम सर्वत्र औसत लम्बाई ३ राजू है। लम्बाई ३ राजू **X** ऊँचाई ७ राजू =२१ राजू हुए।

नीचे वाला भाग तल में ७ राजू लम्बा है तथा क्रमश: घटते हुए ऊपर १ राजू लम्बा है। इसप्रकार पूर्व-पश्चिम में औसत लम्बाई ४ राजू है। अत: नीचे वाले भाग का क्षेत्रफल ४**X**७=२८ राजू हुआ।

चौदह राजू ऊँचा सम्पूर्ण लोक उत्तर-दक्षिण में ७ राजू मोटा है अर्थात् २१+२८=४९**X**७=३४३ राजू हुआ। इसकी सम्पूर्ण दिशाओं और विदिशाओं में अनन्त अलोक है। एक राजू में असंख्यात योजन होते हैं।

छह द्रव्य स्वरूप इस लोक में जीव द्रव्यों की संख्या अनन्तानंत (अक्षय अनन्त) है। इस अनन्तानन्त जीव राशि में एक भी जीव कभी बढ़ता नहीं

और कभी घटता नहीं। जीव संसार में से मोक्ष चला जाता है; परन्तु विश्व के जीवों की संख्या उतनी ही रहती है, वह घटती या बढ़ती नहीं। इसीप्रकार पुद्गल की संख्या उतनी ही रहती है, वह घटती या बढ़ती नहीं है। इसीप्रकार पुद्गल परमाणु भी अनन्तानन्त हैं। वे भी तीनों काल जितने हैं, उतने ही रहते हैं। कोई भी जीव कभी अजीव नहीं होता और अजीव कभी जीव नहीं होता। कहा भी है -

जड़ ते जड़ त्रण काल मा, चेतन चेतनरूप।
कोई कोई पलटे नहीं, छोड़ी आप स्वरूप॥

जीव और पुद्गल के अलावा इस लोक में एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य और असंख्यात कालाणु सदा विद्यमान हैं। प्रत्येक जीवद्रव्य में ज्ञान, आनन्द आदि अनन्त गुण-पर्याय स्वरूप निज वैभव भरा है। परमाणु आदि अजीव द्रव्य भी अपने-अपने अनन्त गुण-पर्याय स्वभाव से भरे हुए हैं। इस लोक के ऊर्ध्व भाग में अनन्त सिद्ध भगवान अपने स्वरूप में अनन्त आनन्द के वेदनपूर्वक लीन रहते हुए सदा विराजमान रहते हैं। अपने स्वरूप को भूले हुए अनन्त अज्ञानी जीव भी दु:ख भोगते हुए इस लोक में सर्वत्र जन्म-मरण करते हुए भ्रमण कर रहे हैं।

आत्मा की ज्ञान-पर्याय में इस लोक के समस्त द्रव्य-गुण को एक साथ जानने की सामर्थ्य है। यह आत्मा लोक में रहते हुए भी लोक के अन्य समस्त पदार्थों से भिन्न है। उसके ज्ञानस्वभाव की एक समय की पर्याय में ऐसी अचिन्त्य सामर्थ्य है कि वह तीनकाल, तीनलोक के पदार्थों को अपने ज्ञान का ज्ञेय बना ले तो भी उनमें किंचित् भी राग-द्वेष न करे। अहो ! ऐसे वीतरागी ज्ञानस्वभाव की क्या बात करें ? ऐसे स्वभाव की पहिचान से यह जीव समभाव प्रगट करता है तथा लोक में भ्रमण का अभाव करके, मुक्ति प्रगट करके लोकाग्र में स्थिर हो जाता है। **(क्रमश:)**

नियमसार प्रवचन –

आत्मध्यान ही प्रतिक्रमण है

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार की गाथा ९२ पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। गाथा मूलत: इसप्रकार हैं –

उत्तमअट्ठं आदा तम्हि ठिदा हणदि मुणिवरा कम्मं।
तम्हा दु झाणमेव हि उत्तमअट्ठस्स पडिकमणं।।९२।।

(हरिगीत)

उत्तम पदारथ आतमा में लीन मुनिवर कर्म को।
घातते हैं इसलिए निज ध्यान ही है प्रतिक्रमण।।९२।।

आत्मा उत्तम पदार्थ है। उत्तम पदार्थरूप आत्मा में स्थित मुनिराज कर्मों का नाश करते हैं। इसलिये आत्मध्यान ही उत्तमार्थ प्रतिक्रमण है।

(गतांक से आगे....)

श्री समयसार की (अमृतचन्द्राचार्यदेवकृत आत्मख्याति नामक) टीका में (१८९वें श्लोक द्वारा) कहा है कि :-

(वसंततिलका)

यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतं
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुत: स्यात्।
तत्किं प्रमाद्यति जन: प्रपतन्नधोऽध:
किं नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमाद:।।४५।।

(रोला)

प्रतिक्रमण भी अरे जहाँ विष-जहर कहा हो।
अमृत कैसे कहें वहाँ अप्रतिक्रमण को।।
अरे प्रमादी लोग अधोऽध: क्यों जाते हैं ?
इस प्रमाद को त्याग ऊर्ध्व में क्यों नहीं जाते? ।।४५।।

जहाँ प्रतिक्रमण को ही विष कहा है, वहाँ अप्रतिक्रमण अमृत कहाँ से होगा? (अर्थात् नहीं हो सकता।) तो फिर मनुष्य नीचे-नीचे गिरते हुए प्रमादी क्यों होते हैं? अप्रमादी होते हुए ऊँचे-ऊँचे क्यों नहीं चढ़ते?

जो शास्त्र ब्रह्मचर्य के शुभभाव को भी धर्म न कहें, वे शादी आदि के अशुभभाव की आज्ञा तो दे ही कैसे सकते हैं? शुभ को भी जो विष कहे, वह अशुभ को तो अमृत कहाँ से कहेगा? अरे! शुद्धस्वरूप में स्थिर होने के लिये शुभ को भी विष कहा है, फिर भी जीव शुद्धस्वरूप में क्यों नहीं ठहरते और नीचे गिरते हुए प्रमादी क्यों होते हैं? शुभ को भी छोड़कर शुद्धता में ऊँचे क्यों नहीं चढ़ते? हमारा आशय तो शुभ को भी छुड़ाकर शुद्धता में ले जाने का था। जब हम निश्चय से शुभ को भी विष कहकर छोड़ने के लिए कहते हैं, तब हिंसादिक पापभाव तो आदर योग्य होंगे ही कैसे? शुभ को भी छोड़कर शुद्धस्वरूप में जाने के लिए ही हमने शुभ को विष कहा है। शुभ भी प्रमाद है, उसे छोड़कर अप्रमादी होकर शुद्धस्वरूप में लीन होने के लिए हम कहते हैं; अतः शुभाशुभ से रहित स्वभाव की दृष्टि करके उसमें लीनतापूर्वक शरीर छूटने को भगवान ने उत्तमार्थ-प्रतिक्रमण कहा है। जिसने ऐसी समाधिपूर्वक देहत्याग किया, उसे पुनः देह धारण करना नहीं पड़ता।

इस ९२वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक द्वारा कहते हैं :-

(मंदाक्रांता)

आत्मध्यानादपरमखिलं घोरसंसारमूलं
ध्यानध्येयप्रमुखसुतप: कल्पनामात्ररम्यम्।
बुद्ध्वा धीमान् सहजपरमानन्दपीयूषपूरे
निर्मज्जन्तं सहजपरमात्मानमेकं प्रपेदे।।१२३।।

(हरिगीत)

रे ध्यान-ध्येय विकल्प भी सब कल्पना में रम्य हैं।
इक आतमा के ध्यान बिन सब भाव भव के मूल हैं।।
यह जानकर शुध सहज परमानन्द अमृत बाढ में।
डुबकी लगाकर सन्तजन हों मगन परमानन्द में।।१२३।।

आत्मध्यान के अतिरिक्त अन्य सब घोर संसार का मूल है, (और) ध्यान-ध्येयादिक सुतप (अर्थात् ध्यान, ध्येय आदि के विकल्पवाला शुभ तप भी) कल्पनामात्र रम्य है - ऐसा जानकर धीमान् (-बुद्धिमान पुरुष) सहज परमानन्दरूपी पीयूष के पूर में डूबते हुए (-निमग्न होते हुए) ऐसे एक सहज परमात्मा का आश्रय करते हैं।

ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की श्रद्धा भी ध्यान है; उसका ज्ञान भी ध्यान है, और उसमें एकाग्रता भी ध्यान है। सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र - यह तीनों ही ध्यान में समा जाते हैं। ध्यान कहो या मोक्ष का मार्ग कहो - एक ही बात है। शुद्धचैतन्य वस्तु के ध्यान के अलावा अन्य कोई मोक्षमार्ग नहीं है। इस आत्मध्यान से अन्य जो कुछ भी है, वह सब घोर संसार का मूल है। भले ही व्यवहार-रत्नत्रय का विकल्प हो; किन्तु वह भी संसार का ही कारण है। चैतन्यस्वभाव की तरफ का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण ही सच्चा प्रतिक्रमण है और वही मुक्ति का मार्ग है। हिंसादि के पाप परिणाम तो संसार के कारण हैं ही; किन्तु दयादि के शुभपरिणाम भी संसार के ही कारण हैं। मोक्ष का कारण तो भगवान चिदानन्द आत्मा का रागरहित ध्यान ही है। चैतन्य के ध्यान के अलावा सब ध्यान संसार के कारण है।

सर्वज्ञ भगवान, निर्ग्रन्थ गुरु और वीतरागी शास्त्र कैसे होते हैं और उनका बताया हुआ शुद्धात्मा कैसा है - यह जानकर आत्मा का ध्यान करना ही संसार के अभाव का कारण है, इसके अतिरिक्त अन्य सब संसार

का ही कारण है। ध्यान और ध्येय के भेद का विकल्प भी संसार कारण में ही गर्भित है। वीतरागमार्ग में शुद्धचैतन्य के ध्यान के अलावा अन्य कुछ भी मोक्ष का कारण नहीं है।

मात्र चैतन्य ज्ञायकस्वभाव की रुचि करके एकाग्रता करनेवाले जीव को ही प्रतिक्रमण होता है, इसके अतिरिक्त अन्य में एकाग्रता होना संसार का कारण है। ध्येय और ध्यान के भेदरूप जो व्यवहार-तप अर्थात् व्यवहार-मुनिपना है, वह भी कल्पनामात्र रम्य है, व्यवहार-रत्नत्रय का शुभराग भी कथनमात्र रम्य है। भेद के विकल्प का राग वास्तव में आत्मशान्ति का कारण नहीं है। चरणानुयोग में शुभरागरूप व्यवहार-तप की बात आती है, वह कल्पनामात्र रम्य है। परमार्थ से तो शुभरागरूप व्यवहार-रत्नत्रय भी संसार का ही कारण है। ध्यान-ध्येय के भेदविकल्प रहित शुद्धचैतन्य में एकाग्रतारूप ध्यान ही मुक्ति का कारण है।

'प्रत्येक आत्मा परमात्मशक्ति से भरपूर है और किसी पर के अवलम्बन बिना ही अकेले अपने अन्तर्तत्त्व के अवलम्बन से ही परमात्मदशा प्राप्त हो सकती है - ऐसा प्रथम पहिचानकर उस परमात्मतत्त्व के आश्रय से जो ध्यान होता है, वही मुनियों को मोक्ष का कारण है - ऐसा ज्ञान करके उसका आदर करो! तथा इसके अतिरिक्त समस्त रागभावों को संसार का कारण जानो!!

बुद्धिमान पुरुष यह जानकर सहजपरमानन्दरूपी अमृत के पूर में डूबते हुए सहज-परमानन्द एक का ही आश्रय करते हैं। जो व्यवहार का - राग का आश्रय करके लाभ मानते हैं, वे वास्तव में बुद्धिमान नहीं हैं। अहो! परमात्मतत्त्व भगवान आत्मा तो त्रिकाल आनन्दामृत से परिपूर्ण है - ऐसे एक आत्मा का ही जो आश्रय करते हैं, वे जीव आनन्द से प्रफुल्लित हो जाते हैं। अरे भाई! तुझे अमृत का स्वाद लेना है न? अतः तू अन्तर्मुख होकर आत्मा का श्रद्धान करके उसी का आश्रय कर - यही करने योग्य है।

(क्रमशः)

समयसार की 47 शक्तियों पर प्रवचन

प्रभुत्व शक्ति

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी द्वारा समयसार की 47 शक्तियों पर किये गये प्रवचनों को यहाँ पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

(गतांक से आगे....)

अखण्डितप्रतापस्वातंत्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः।

जिसका प्रताप अखण्डित है अर्थात् जो किसी से खण्डित नहीं की जा सकती – ऐसे स्वातंत्र्य से शोभायमानपना जिसका लक्षण है – ऐसी प्रभुत्वशक्ति है।

भगवान आत्मा चैतन्यशाली है। चैतन्यशाली के दो अर्थ होते हैं, चैतन्यवन्त और चैतन्य द्वारा शोभायमान।

जिस भाव से भव का अभाव हो, वह शुद्धभाव ही उपादेय और शोभनीय है। धर्मी जीव को भले शुभभाव होता हो; परन्तु उन्हें भावना तो एक शुद्धोपयोग की ही होती है।

केवली भगवान कहते हैं कि भाई! तेरी आत्मवस्तु में एक प्रभुत्व नाम की शक्ति है। इस शक्ति के भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद एक त्रिकाली शुद्ध चिन्मात्र वस्तु का लक्ष्य लेते ही तेरी प्रभुत्वशक्ति अखंडित प्रतापसहित तत्काल प्रगट होती है। – इसप्रकार वह द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों में व्याप्त हो जाती है।

द्रव्य में प्रभुत्व, गुण में प्रभुत्व और पर्याय में प्रभुत्व होता है। तेरी प्रभुत्वशक्ति क्रम से निर्मल-निर्मल ऐसी परिणमती है कि उसका प्रताप किसी से निवारा नहीं जा सकता।

देखो! देव-गुरु आदि पंचपरमेष्ठी भगवंत भी परद्रव्य होने से तेरे द्रव्य, गुण और पर्याय – तीनों में से एक में भी व्याप्त नहीं होते। तथा देव-गुरु के प्रति जो विनय-भक्ति आदि का शुभराग होता है, वह भी आत्मा के द्रव्य-गुण में व्याप्त नहीं होता, मात्र एक समय की पर्याय में व्याप्त होता है, सभी पर्यायों में भी व्याप्त नहीं होता।

धर्मीजीव के यह प्रभुत्वशक्ति द्रव्य-गुण-पर्याय – तीनों में व्यापती है। अज्ञानी अपने को दीन अनुभव करते हैं। उससे कहते हैं कि तेरे एक-एक गुण में प्रभुत्वशक्ति भरी है। मैं तो अनन्त-अनन्त प्रभुता से भरा **चैतन्य महाप्रभु हूँ – ऐसा भान करके अन्तर में लक्ष्य करते ही पर्याय में प्रभुता उछलती है।** साथ में ज्ञानादि अनन्तशक्तियाँ भी निर्मलपने उछलती हैं। इसी का नाम सम्यग्दर्शन है, धर्म है।

प्रश्न – क्या ज्ञानी भी अपने को अल्पज्ञ और पामर जानते हैं?

उत्तर – सम्यग्दृष्टि के द्रव्य-गुण-पर्याय – तीनों में प्रभुता व्याप्त होने पर भी, जबतक पूर्ण वीतरागता और केवलज्ञान नहीं हुआ, तबतक जितनी अपूर्णदशा है, उतनी पामरता और अल्पज्ञता है। ज्ञानी ऐसा यथार्थ जानता है – यह स्याद्वाद है।

अभी पूर्ण परमात्मदशा प्रगट नहीं हई – इस अपेक्षा साधक अपनी पर्याय को पामर जानता है। अर्थात् **ज्ञानी को अपनी पामर पर्याय का विवेक होता है, परन्तु दीनता नहीं होती।**

कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है कि **सम्यग्दृष्टि जीव अपनी आत्मा को तृणसमान समझता है। सो यह तो अंतरंग में प्रभुता की प्रतीति सहित पर्याय के विवेक की बात है; क्योंकि वे जानते हैं कि अहो! कहाँ दिव्य केवलज्ञानदशा और कहाँ मेरी अल्पज्ञदशा?**

इसप्रकार विवेक करके धर्मीजीव द्रव्यस्वभाव के आश्रय से पूर्णदशा प्रगट करने की भावना भाते हैं।

भाई! **यदि अकेली पामरता को ही मानें और अंतरंग की प्रभुता को न पहिचानें तो पामरता दूर करके प्रभुता कहाँ से लायेगा?**

सम्यग्दृष्टि के अपने स्वरूप का अनुभव होते ही निज पूर्णानन्द प्रभु की अन्तर में प्रतीति होती है और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है; परन्तु जबतक पूर्ण चारित्रदशा/वीतरागदशा प्रगट नहीं होती, तबतक जो भी राग आता है, उस राग को वे पामरता समझते हैं।

आहाहा....! **कहाँ चारित्रवंत महा मुनिराज की आनन्ददशा और कहाँ चौथे गुणस्थानवर्ती की दशा?**

श्रेणिक राजा क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं तथा आगे चलकर वे केवलज्ञान प्रगट करेंगे। वे भी अभी यह जानते हैं कि मेरी पर्याय में इतनी पामरता है। उन्हें केवली, मुनिराज और चौथे गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि की दशा का बराबर विवेक है।

धवल में ऐसा आता है कि **स्वभाव के आश्रय से मति-श्रुतज्ञान की जो वर्तमानदशा प्रगट हुई है, वह केवलज्ञान को बुलाती है अर्थात् वह वर्तमान सम्यग्ज्ञान की दशा केवलज्ञान के स्वरूप को जानती है, पहिचानती है और वही बढ़ते-बढ़ते केवलज्ञानरूप हो जायेगी।**

अहो! संतों ने क्या कमाल का कार्य किया है? एकबार सुन तो नाथ! तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय का संरक्षण और संवर्धन करनेवाला तू स्वयं ही है।

जिसप्रकार पति-पत्नी का नाथ होने के नाते वह उनकी रक्षा करता है और उसका भरण-पोषण करता है; उसीप्रकार आत्मा में श्रद्धा-ज्ञान-आनन्द की दशारूप निर्मलपर्याय प्रगट हुई है, उसकी रक्षा करनेवाला स्वयं आत्मा ही है, अन्य कोई नहीं है।

आहाहा....! मतिज्ञान केवलज्ञान का आह्वान करता है कि आओ! केवलज्ञान आओ! **सम्यग्दृष्टि-धर्मी विचारता है कि अहो! धन्य है वह अवतार! जिसमें मेरी ऋद्धि का प्रभुत्व मेरी पर्याय में प्रगट हुआ है, परन्तु अभी पूर्णदशा प्रगट होना बाकी है। द्रव्य-गुण के समान पर्याय में भी पूर्ण अर्थात् केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त-आनन्द, अनन्तवीर्य, अनन्तप्रभुता आदि पूर्ण वैभव शीघ्र प्रगट हो - ऐसी उनकी निरन्तर भावना वर्तती है।** उन्हें अपूर्णता किंचित् नहीं पुसाती।

आत्मा में कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान और अधिकरण - ये सभी षट्कारकरूप छह शक्तियाँ स्वाधीनपने से शोभायमान हैं; क्योंकि ये सभी अपने प्रभुत्वमय हैं। इनमें प्रभुत्वगुण व्यापक हैं, ये अपना काम करने में पराधीन नहीं हैं, ये तो पर की अपेक्षा रहित स्वाधीन हैं।

सम्यग्दर्शनादिरूप कर्म जीव स्वयं अपने षट्कारकपने परिणम कर स्वाधीनपने प्राप्त करता है। इसमें राग या पर की अपेक्षा नहीं होती। नियमसार गाथा २ में आया है कि **निश्चय रत्नत्रय परनिरपेक्ष है, उसे व्यवहाररत्नत्रय, पर और भेद के विकल्पों की अपेक्षा नहीं है - ऐसी प्रभुता से भरा निज वस्तुत्व है।**

जैसे लोक में राजा स्वाधीनता से शोभायमान होता है, वैसे ही निज वस्तुत्व भी स्वाधीनता से शोभायमान है।

समयसार गाथा १७-१८ में आत्मा को चैतन्यराजा कहा है। राजा का अर्थ है - ''राजते शोभते इति राजा'' -

जो अखंडितप्रताप से स्वाधीनपने शोभित होता है, वही राजा है। यह चैतन्यराजा अपने अनन्तगुण-पर्यायों से अनिवारित जिसका तेज है - ऐसे प्रताप से स्वाधीनपने शोभायमान है। (क्रमशः)

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : एक पर्याय दूसरी पर्याय को स्पर्श नहीं करती तो पूर्व संस्कार दूसरी पर्याय में कैसे काम करते हैं ?

उत्तर : एक पर्याय दूसरी पर्याय को स्पर्श नहीं करती, यह बात तो ठीक ही है, परन्तु वर्तमान पर्याय में ऐसा प्रबल संस्कार डाला होगा तो उसका जोर दूसरी पर्याय में प्रकट हो- ऐसी ही उस उत्पाद-पर्याय की स्वतन्त्र योग्यता होती है, उत्पाद-पर्याय के सामर्थ्य से स्मरण में आता है।

प्रश्न : श्रवण करके संस्कार दृढ करना- आगे बढने का कारण है क्या?

उत्तर : हाँ, अन्दर में संस्कार दृढ डाले तो आगे बढता है।

प्रश्न : श्रवण में प्रेम हो तो मिथ्यात्व भी मन्द पड़ता होगा?

उत्तर : मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी तो अनन्तबार मन्द पड़ चुका है, फिर भी वह सम्यग्दर्शन का कारण नहीं बना। मूल दर्शनशुद्धि पर जोर होना चाहिए।

प्रश्न : नवतत्त्व का विचार तो पहले अनन्तबार कर चुके हैं, फिर भी लाभ क्यों नही हुआ ?

उत्तर : भाई ! पहले जो नवतत्त्व का विचार कर चुके हो,उससे इसमें कुछ विशेषता है। पहले जो नवतत्त्व का विचार कर चुके हो, वह तो अभेदस्वरूप के लक्ष्य बिना किया था, जबकि यहाँ अभेदस्वरूप के लक्ष्य सहित आत्मानुभूति की बात है।

पहले अकेले मन के स्थूल विषय से नवतत्त्व के विचाररूप आँगन तक तो अनन्तबार आया है; परन्तु उससे आगे बढकर विकल्प तोड़कर ध्रुव चैतन्यतत्त्व में एकपने की श्रद्धा करने की अपूर्व समझ से वंचित रहा; इसलिए भवभ्रमण खड़ा रहा।

प्रश्न : प्रवचन तो वर्षों से सुनते आ रहे हैं, अब तो अन्दर जाने का कोई संक्षिप्त मार्ग बताइये ? जीवन अल्प रह गया है ?

उत्तर : आत्मा अकेला ज्ञानस्वभाव चिद्घन है, अभेद है, उसकी दृष्टि करो। भेद के ऊपर लक्ष्य करने में रागी जीव को राग उत्पन्न होता है, इसलिए भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद की दृष्टि करो - यही संक्षिप्त सार है।

प्रश्न : तिर्यंच को ज्ञान अल्प होने पर भी आत्मा पकड़ में आ जाता है और हम इतनी मेहनत करते हैं तो भी आत्मा पकड़ में क्यों नहीं आता?

उत्तर : ज्ञान में आत्मा का जितना वजन आना चाहिए, वह नहीं आता; स्वरूपप्राप्ति का जितना जोर आना चाहिए, वह नहीं आता; जितना जिसप्रकार का राग छूटना चाहिए, वह नहीं छूटता; इसलिए कार्य नहीं होता अर्थात् आत्मा पकड़ में नहीं आता।

प्रश्न : शुद्धनय का पक्ष हुआ है, इसका क्या अर्थ है?

उत्तर : शुद्धनय का पक्ष होने का आशय है -शुद्धात्मा की रुचि होना। अनुभव अभी हुआ नहीं है; किन्तु रुचि ऐसी हुई है कि अनुभव होगा ही; परन्तु यह होने पर भी कहीं सन्तोष कर लेने की बात नहीं है। इस जीव के सम्बन्ध में केवली ऐसा जानते हैं कि इस जीव की रुचि इतनी प्रबल है कि अनुभव करेगा ही। इस जीव को ऐसा ज्ञायक का जोर वीर्य में वर्त्तता है- यह केवली जानते हैं। ●

समाचार दर्शन -

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय की –

साप्ताहिक गोष्ठियाँ संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में साप्ताहिक गोष्ठियों की शृंखला में निम्न गोष्ठियों का आयोजन हुआ –

(1) दिनांक 13 सितम्बर को '**षट् आवश्यक : श्रावकों व श्रमणों के परिप्रेक्ष्य में**' विषय पर अष्टम् गोष्ठी का आयोजन हुआ।

दो सत्रों में आयोजित इस गोष्ठी के प्रथम सत्र की अध्यक्षता पण्डित खेमचंदजी शास्त्री उदयपुर ने की। गोष्ठी का मंगलाचरण उपाध्याय कनिष्ठ से असान जैन खनियांधाना ने एवं संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष से ऋतिक जैन शाहगढ ने किया। द्वितीय सत्र के अध्यक्ष प्रो. फूलचंदजी प्रेमी बनारस थे। गोष्ठी का मंगलाचरण उपाध्याय कनिष्ठ से विशाल जैन देवलाली एवं संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष से विकास जैन मुम्बई ने किया। प्रथम सत्र में श्रेष्ठ वक्ता अमन जैन अलवर एवं द्वितीय सत्र में श्रेष्ठ वक्ता अनर्घ्य जैन विदिशा रहे।

(2) दिनांक 20 सितम्बर को '**रहस्य : रहस्यमयी भक्तामर का**' विषय पर नवम् गोष्ठी का आयोजन हुआ। दो सत्रों में आयोजित इस गोष्ठी के प्रथम सत्र की अध्यक्षता पण्डित अशोकजी शास्त्री इन्दौर ने की। गोष्ठी का मंगलाचरण उपाध्याय कनिष्ठ से अनुज जैन भगवां ने एवं संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष से शरत कुमार चेन्नई ने किया।

द्वितीय सत्र के अध्यक्ष पण्डित निलयजी शास्त्री आगरा थे। गोष्ठी का मंगलाचरण उपाध्याय कनिष्ठ से जयंत जैन बालोतरा एवं संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष से अंकुर जैन खड़ैरी ने किया। प्रथम सत्र में श्रेष्ठ वक्ता मोहित जैन फुटेरा एवं द्वितीय सत्र में श्रेष्ठ वक्ता सर्वज्ञ जैन बरगी रहे।

(3) दिनांक 27 सितम्बर को '**निमित्त-उपादान : एक विमर्श**' विषय पर दशम् गोष्ठी का आयोजन हुआ।

दो सत्रों में आयोजित इस गोष्ठी के प्रथम सत्र की अध्यक्षता पण्डित अमोलजी सिंघई हिंगोली ने की। गोष्ठी का मंगलाचरण उपाध्याय कनिष्ठ से अनीश जैन ग्वालियर ने एवं संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष से एकांश जैन खड़ैरी ने किया।

द्वितीय सत्र के अध्यक्ष डॉ. महेशजी शास्त्री भोपाल थे। गोष्ठी का मंगलाचरण उपाध्याय कनिष्ठ से प्रशांत जैन भिण्ड एवं संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष से संयम जैन तिगोड़ा ने किया। प्रथम सत्र में श्रेष्ठ वक्ता मानस जैन बांसवाड़ा एवं द्वितीय सत्र में आयुष जैन मडदेवरा रहे।

(4) दिनांक 4 अक्टूबर को '**द्रव्यसंग्रह : एक परिशीलन**' विषय पर एकादशम् गोष्ठी का आयोजन हुआ।

दो सत्रों में आयोजित इस गोष्ठी के प्रथम सत्र की अध्यक्षता पण्डित राजेन्द्रजी शास्त्री खड़ैरी ने की। गोष्ठी का मंगलाचरण उपाध्याय कनिष्ठ से निखिलेश मैंद ने एवं संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष से आयुष जैन शाहगढ ने किया।

द्वितीय सत्र की अध्यक्षता पण्डित संदीपजी शास्त्री डडूका ने की। गोष्ठी का मंगलाचरण उपाध्याय कनिष्ठ से श्रेयांस चंदन इचलकरंजी ने एवं संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष से प्रतीक हरावत रिसोड़ ने किया। प्रथम सत्र में श्रेष्ठ वक्ता पुष्प जैन आगरा एवं द्वितीय सत्र में श्रेष्ठ वक्ता आकाश जैन मौ रहे।

सभी गोष्ठियों के संयोजक शास्त्री तृतीय वर्ष से संभव जैन दिल्ली, पवित्र जैन आगरा, अमन जैन आरोन, अखिल जैन मण्डीदीप, आप्तअनुशील जैन दमोह थे। आभार प्रदर्शन डॉ. शांतिकुमारजी पाटील एवं पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री ने किया।

तृतीय महिला ज्ञान शिविर संपन्न

पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली द्वारा दिनांक 25 से 27 सितम्बर तक चार अनुयोग विषय पर तृतीय महिला ज्ञान शिविर का ऑनलाइन आयोजन किया गया।

इस अवसर पर विदुषी राजकुमारी दीदी दिल्ली ने द्रव्यानुयोग की प्रयोगात्मक विधि, ब्र. सुजाता दीदी कुम्भोज बाहुबली ने करणानुयोग की प्रयोगात्मक विधि, ब्र. विमला दीदी जयपुर ने करणानुयोग का प्रयोजन और प्रमादी बुद्धि का निराकरण, ब्र. आरती दीदी छिन्दवाड़ा ने चरणानुयोग की प्रयोगात्मक विधि, ब्र. नीलिमा दीदी कोटा ने प्रथमानुयोग का प्रयोजन और रागादि बुद्धि का निषेध, ब्र. समता झांझरी उज्जैन ने चरणानुयोग का प्रयोजन और निमित्त-नैमित्तिक संबंध की पुष्टि, ब्र. वासंतीबेन देवलाली ने प्रथमानुयोग की प्रयोगात्मक विधि, ब्र. जीनल दीदी देवलाली ने द्रव्यानुयोग का प्रयोजन और स्वच्छन्द प्रवृत्ति का निषेध एवं विदुषी स्वानुभूति शास्त्री मुम्बई ने चारों अनुयोगों का क्रम विषय पर अपने विचार व्यक्त किये।

पुरुषार्थ करने में स्वयं स्वतंत्र है। स्वयं के जो परिणाम होते हैं, उसका कर्ता स्वयं है। स्वयं के परिणाम कैसे करना वह अपने हाथ में है; लेकिन बाहर में जो उदय आते हैं जैसे कि शरीर में रोग आये, असाता वेदनीय आये, धंधे में नुकसान हो – यह सब कार्य को स्वयं पलट सकता नहीं है। लेकिन राग-द्वेष कितने करना यह स्वयं कर सकता है। **- आत्मधर्म, अगस्त 2019 पृष्ठ 5 से साभार**

केवल विदुषी बहनों द्वारा –

सोलहकारण भावना ई-संगोष्ठी संपन्न

सोलहकारण भावनाओं पर आधारित ई-संगोष्ठी का आयोजन दिनांक 13 से 20 सितम्बर तक किया गया, जिसमें केवल विदुषी बहनों ने अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये।

● दिनांक 13 सितम्बर को गोष्ठी की अध्यक्षता श्रीमती गुणमालाजी भारिल्ल जयपुर ने की। मुख्य वक्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल एवं मुख्य अतिथि श्रीमती आरती पाटनी सिंगापुर थे। वक्ताओं में दर्शनविशुद्धि भावना पर ब्र.प्रज्ञा दीदी दिल्ली एवं विनय संपन्नता भावना पर डॉ. रंजना दिल्ली ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया। गोष्ठी का संचालन श्रीमती शुचिता जितेन्द्र राठी पुणे ने किया।

● दिनांक 14 सितम्बर को गोष्ठी की अध्यक्षता श्रीमती कमलाजी भारिल्ल जयपुर ने की। वक्ताओं में शीलव्रतेष्वनतिचार भावना पर डॉ. ज्योति सेठी जयपुर एवं अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना पर सुश्री अनु शास्त्री दलपतपुर ने अपने विचार व्यक्त किये। गोष्ठी का संचालन श्रीमती दीक्षा आरोन ने किया।

● दिनांक 15 सितम्बर को गोष्ठी की अध्यक्षता श्रीमती कुसुम चौधरी किशनगढ ने की। वक्ताओं में संवेग भावना पर शाश्वत स्तुति सागर एवं शक्तित: त्याग भावना पर सुश्री पूजा शास्त्री लूणदा ने अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया। गोष्ठी का संचालन श्रीमती अनुभूति लुहाड़िया मंगलायतन ने किया।

● दिनांक 16 सितम्बर को गोष्ठी की अध्यक्षता श्रीमती सुनीता जैन अहमदाबाद ने की। वक्ताओं में शक्तित: तप भावना पर सुश्री श्रुति शास्त्री जयपुर एवं साधु-समाधि भावना पर ब्र. आरती दीदी छिन्दवाड़ा ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया। गोष्ठी का संचालन सुश्री सर्वदर्शी भारिल्ल जयपुर ने किया।

● दिनांक 17 सितम्बर को गोष्ठी की अध्यक्षता श्रीमती लता जैन देवलाली ने की।

वक्ताओं में वैयावृत्यकरण भावना पर सुश्री आयुषी जैन आत्मार्थी दिल्ली एवं अर्हद्भक्ति भावना पर ब्र. प्रीति दीदी खनियांधाना ने अपने विचार प्रस्तुत किये। गोष्ठी का संचालन श्रीमती स्तुति जैन जयपुर ने किया।

● दिनांक 18 सितम्बर को गोष्ठी की अध्यक्षता ब्र. पुष्पा झांझरी उज्जैन ने की।

वक्ताओं में आचार्य भक्ति भावना पर शाश्वत मानसी घुवारा एवं बहुश्रुत भक्ति भावना पर डॉ. स्वाति जैन नवसारी ने अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया। गोष्ठी का संचालन सुश्री प्रज्ञा जैन देवलाली ने किया।

● दिनांक 19 सितम्बर को गोष्ठी की अध्यक्षता श्रीमती शिल्पा मोदी नागपुर ने की।

वक्ताओं में प्रवचन भक्ति भावना पर सुश्री नयना शास्त्री भोपाल एवं आवश्यकापरिहाणि भावना पर श्रीमती पूजा भारिल्ल जयपुर ने अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया। गोष्ठी का संचालन श्रीमती ज्योति मोदी सागर ने किया।

● दिनांक 20 सितम्बर को गोष्ठी की अध्यक्षता विदुषी राजकुमारी जैन धर्मायतन सनावद ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्रीमती अनिता जैन बड़ौदा उपस्थित थीं। विशेष उद्बोधन पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल व श्री अजितजी बड़ौदा एवं विशेष प्रवचन पण्डित राजकुमारजी शास्त्री उदयपुर ने किया।

वक्ताओं में मार्ग प्रभावना भावना पर सुश्री हर्षिता जैन उदयपुर एवं प्रवचन वत्सलत्व भावना पर श्रीमती देशना जैन दिल्ली ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया। गोष्ठी का संचालन श्रीमती रागिनी जैन आगरा ने किया।

गोष्ठी के मार्गदर्शक पण्डित अजितजी शास्त्री अलवर, मुख्य संयोजक पण्डित गणतंत्रजी शास्त्री आगरा, संयोजक ब्र. प्रीति दीदी खनियांधाना, श्रीमती प्रीति जैन जयपुर व श्रीमती रागिनी जैन आगरा एवं तकनीकी सहयोगी विनीत शास्त्री हटा रहे।

भाई ! ये बनने वाले भगवान की बात नहीं है, यह तो बने-बनाये भगवान की बात है। स्वभाव की अपेक्षा तुझे भगवान बनना नहीं है, अपितु स्वभाव से तो तू बना-बनाया भगवान ही है। – ऐसा जानना मानना और अपने में ही जम जाना, रम जाना पर्याय में भगवान बनने का उपाय है। तू एक बार सच्चे दिल से अन्तर की गहराई से इस बात को स्वीकार तो कर; अन्तर की स्वीकृति आते ही तेरी दृष्टि परपदार्थों से हटकर सहज ही स्वभाव-सन्मुख होगी, ज्ञान भी अन्तरोन्मुख होगा और तू अन्तर में ही समा जायेगा, लीन हो जायेगा, समाधिस्थ हो जायेगा। ऐसा होने पर तेरे अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का ऐसा दरिया उमड़ेगा कि तू निहाल हो जायेगा, कृतकृत्य हो जायेगा। एक बार ऐसा स्वीकार करके तो देख।

– चिन्तन की गहराईयाँ, पृष्ठ 183

बाबू युगलजी की स्मृति सभा संपन्न

जैन जगत के दैदीप्यमान नक्षत्र बाबू जुगलकिशोरजी 'युगल' कोटा की पंचम पुण्य स्मृति पर आयोजित चिरंतन सभा श्री कुंदकुंद-कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, मुंबई के तत्त्वावधान में दो सत्रों में आयोजित की गई।

दिनांक 2 अक्टूबर को आयोजित प्रथम सत्र के अध्यक्ष श्री अनंतराय ए. शेठ मुम्बई एवं मुख्य अतिथि श्री रमेशचंदजी सौगानी कोलकाता थे। कार्यक्रम का मंगलाचरण डॉ. मनोज जैन जबलपुर ने किया।

ट्रस्ट के मंत्री श्री महिपालजी ज्ञायक बांसवाड़ा द्वारा संचालित इस सभा में अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. हुकमचंद भारिल्ल, ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री सनावद, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, डॉ. सुदीपकुमारजी जैन दिल्ली, पण्डित प्रकाशभाई कोलकाता, पण्डित चेतनभाई मेहता, पण्डित शैलेषभाई शाह तलोद आदि विद्वानों ने अपने संस्मरण सुनाकर बाबूजी को याद किया। इसके अतिरिक्त श्रीमती आनंदधारा जैन, कोटा ने बाबूजी द्वारा रचित कविता सुनाई। इस अवसर पर मुमुक्षु समाज की गतिविधियों, समाचारों और समसामयिक घटनाओं को समाज तक पहुंचाने के लिए निर्मित एक नवीन ऐप '**कहान संदेश**' का भव्य लोकार्पण किया गया।

दिनांक 3 अक्टूबर को आयोजित द्वितीय सत्र में कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री बसंतभाई दोशी मुंबई एवं मुख्य अतिथि श्री आलोकजी जैन कानपुर थे। कार्यक्रम का शुभारम्भ अचिंत्य जैन ग्वालियर के मंगलाचरण से हुआ।

श्री विजयजी बड़जात्या इन्दौर द्वारा संचालित इस सभा में श्री पवनजी जैन मंगलायतन, पण्डित रजनीभाई दोशी हिम्मतनगर, पण्डित देवेन्द्रकुमारजी जैन बिजौलिया, पण्डित प्रदीपजी झांझरी उज्जैन, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, पण्डित विपिनजी शास्त्री नागपुर, पण्डित विक्रांतजी पाटनी झालरापाटन, पण्डित ज्ञाताजी झांझरी उज्जैन ने अपने संस्मरण सुनाकर बाबूजी को याद किया। इसके अतिरिक्त श्रीमती चिरंतन और चिदात्मन जैन, कोटा ने बाबूजी द्वारा रचित कविता सुनाई।

इस अवसर पर समिति द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित लोगो प्रतियोगिता में देश के अनेक प्रतिभाशाली साधर्मियों ने भाग लिया और विभिन्न विद्वानों की समिति ने श्री नीलेश जैन जबलपुर के लोगो को निर्णायक रूप से चुना। इस लोगो में इस महोत्सव की सारी विषय-वस्तु समाहित की गई है। कार्यक्रम का संयोजन श्री विरागजी शास्त्री ने एवं आभार प्रदर्शन श्री हर्षवर्धनजी जैन औरंगाबाद ने किया।

स्नेह मिलन समारोह संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन में शास्त्री तृतीय वर्ष की परीक्षा देने हेतु आये 43 छात्र एवं आचार्य द्वितीय वर्ष की परीक्षा देने हेतु आये 09 छात्र एवं अधिकारियों की उपस्थिति में दिनांक 11 अक्टूबर को स्नेह मिलन समारोह सम्पन्न हुआ।

ज्ञातव्य है कि ये सभी दिनाँक 01 अक्टूबर से स्मारक परिसर आये हुए हैं और अत्यंत सुरक्षित माहौल में एक दूसरे से मिले बिना ही अध्ययन कर रहे हैं और कॉलेज की परीक्षाएं दे रहे हैं। आदरणीय छोटे दादा की छात्रों से मिलने की प्रबल इच्छा को देखते हुए उनके निर्देशानुसार रविवार अवकाश के दिन सोशल डिस्टेंस के साथ प्रवचन हॉल में छात्रों को एकत्रितकर स्नेह मिलन समारोह का आयोजन किया गया।

आदरणीय छोटे दादा एवं अधिकारियों का छात्रों से एवं छात्रों का अपने गुरुओं से मिलने से एकदम भावुक वातावरण हो गया था।

इस अवसर पर डॉ. शान्तिकुमारजी पाटील, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल, श्री शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल, पण्डित पीयूषजी शास्त्री ने छात्रों को संबोधित करते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना की एवं स्वाध्याय करते रहने की प्रेरणा दी।

आदरणीय छोटे दादा डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल ने अपने उद्बोधन में छात्रों से कहा कि इस तत्त्वज्ञान को जन-जन तक पहुंचाने के लिए हम सबको शांति का मार्ग अपनाना होगा, लोगों का विश्वास जीते बिना समाज में रहकर कार्य नहीं किया जा सकता। गोली का जवाब गोली से तो दूर, गोली का जवाब गाली से भी नहीं - इस नीति के अनुसार हमें कार्य करना होगा। संस्था सदैव सभी छात्रों के साथ है। हम सबको गुरुदेवश्री के समान अपने आत्मकल्याण को ऊर्ध्व रखकर किसी की निन्दा और वाद-प्रतिवाद से बचकर तत्त्वप्रचार के कार्य को करते रहना चाहिए।

छात्रों में शास्त्री तृतीय वर्ष से मयंक जैन बंडा, समर्थ जैन विदिशा, आयुष जैन पिपरिया ने वक्तव्य से एवं निखिल जैन फिरोजाबाद ने कविता के माध्यम से और आचार्य द्वितीय वर्ष से सौरभ जैन डूंगासरा ने स्मारक एवं अधिकारियों का आभार व्यक्त किया।

सभा में श्रीमंतजी शास्त्री, गौरवजी शास्त्री, जिनेन्द्रजी शास्त्री एवं श्रीमती गुणमालाजी भारिल्ल भी उपस्थित थे। सभा का संचालन पण्डित जिनकुमारजी शास्त्री ने किया।

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट द्वारा
श्री टोडरमल स्मारक भवन में

23वाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर ऑनलाइन

रविवार, दिनांक 1 नवम्बर से 8 नवम्बर, 2020 तक

डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के निर्देशन में आयोजित इस शिविर में विशेषज्ञ विद्वानों के प्रवचनों एवं कक्षाओं के माध्यम से जैनदर्शन के विविध विषयों का गहराई से अध्ययन/अध्यापन किया/कराया जायेगा।

अत: अन्य शिविरों से पृथक् यह शिविर शास्त्री विद्यार्थियों के लिये तो उपयोगी होगा ही, जैनदर्शन के सूक्ष्म अध्ययन के इच्छुक जिज्ञासुओं के लिये भी एक स्वर्ण अवसर होगा।

सभी साधर्मीजन ऑनलाइन शिविर का अवश्य लाभ लें।

-: संपर्क सूत्र :-
ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर,
जयपुर 302015 (राज.) फोन नं.-0141-2705581,
2707458 E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

ज्ञातव्य है कि यह 26 अक्टूबर का अंक नवम्बर माह का ही अंक है।

मंगल महोत्सव में आप सभी का स्वागत है।

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन इंदौर द्वारा आयोजित

श्री सिद्धचक्र महामंडल विधान

दिनांक 25 दिसंबर 2020 से 1 जनवरी 2021 तक

निवेदक

श्री कुंदकुंद कहान दिगंबर जैन शासन प्रभावना ट्रस्ट, इंदौर

मंगल आमंत्रण

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. JaipurCity/421/2018-20*

तीर्थधाम ढाईद्वीप जिनायतन, इन्दौर

बढ़ते चरण....

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

प्रकाशन तिथि : 24 अक्टूबर 2020

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**